

3. व्याकरण विधि
4. इकाई विधि
5. आगमन विधि
6. निगमन विधि
7. प्रयोजन विधि
8. प्रोजेक्ट विधि
9. समस्या समाधान विधि
10. प्रदर्शन विधि

इस प्रकार शिक्षण की विविध विधियों के अंतर्गत इसे हिन्दी शिक्षण के टूल्स के रूप में प्रयोग में लाया जा सकता है। भाषा के वैज्ञानिक पक्ष का अध्ययन ही भाषा विज्ञान का अध्ययन है जिसमें अर्जित करने के साथ सीखने-सिखाने के लिए भाषाई कौशल का जानना भी आवश्यक है। भाषा विज्ञान संरचना का ज्ञान विश्लेषण करने के साथ ही तकनीकी और कौशल पक्ष का भी विश्लेषण करता है। यह संबंधित नियमों, पद्धतियों और नए निष्कर्षों को भी खोजता है। भारत में अत्यंत प्राचीन समय से ही भाषा के विकास और संवर्धन की परंपरा में पाणिनी, यास्क, पतंजलि, भर्ताहरि आदि आचार्यों का बुनियादी योगदान माना जाता है। लेकिन आधुनिक काल में भाषा विज्ञान की विभिन्न शाखाओं और अनुसंधानों का व्यवस्थित ज्ञानार्जन हमें भाषाविद सस्यूर के माध्यम से प्राप्त होता है। आधुनिक भाषा विज्ञान के तहत विभिन्न अनुप्रयोगों अर्थात् विधाओं के अध्ययन को नवीनतम स्थान और महत्व प्राप्त हुआ। समाजभाषा विज्ञान, मनोभाषा विज्ञान, कंप्यूटर विज्ञान, अनुवाद विज्ञान और शैली विज्ञान, कोश विज्ञान, भाषाशिक्षण आदि जैसी विधाओं को अध्ययन का प्रमुख क्षेत्र माना जाने लगा। ऐसी विभिन्न अनुशासनों को विभिन्न संस्थानों में पठन-पाठन और अनुसंधान का भाग मानकर ज्ञान की नई शाखा के रूप में मान्यता मिलती है। यह भाषा विज्ञान के अध्ययन की उपलब्धि है। इस तरह भाषा विज्ञान और हिन्दी भाषा का शिक्षण एवं अधिगम सबसे प्रमुख भूमिका रखते हैं।

संदर्भ ग्रंथ :-

- 1.संप्रेषणपरक हिंदी भाषा शिक्षण- वैष्ण नारंग, प्रकाश संस्थान, दिल्ली- 1996, पृष्ठ- 84
- 2.भाषा विज्ञान की भूमिका, देवेन्द्रनाथ शर्मा, दीप्ति शर्मा, पृ 176, राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली, संस्करण 2015
- 3.भाषा विज्ञान: सैद्धांतिक चिंतन- रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली- 2004, पृष्ठ- 146
- 4.हिंदी भाषा, भोलानाथ तिवारी, पृ 191, किताब महल प्रकाशन इलाहाबाद, 1992
- 5.अनुवाद का व्याकरण- सं. भोलानाथ तिवारी, वाणी प्रकाशन, दिल्ली- 2013, पृष्ठ- 43
- 6.अनुप्रयुक्त भाषा विज्ञान की व्यावहारिक परख-गुर्रमकोंडा नीरजा, वाणी प्रकाशन, दिल्ली- 2015, पृष्ठ- 60

दादूपंथी संतों के साहित्य में सामाजिक सांस्कृतिक चिंतन

शीतल प्रसाद महेन्द्रा

सह आचार्य एवं विभागाध्यक्ष
राजस्थान केन्द्रीय विश्वविद्यालय
बान्दरसिन्दरी (किशनगढ़) अजमेर
M 9887011119

भारतीय ज्ञान परंपरा अद्वितीय ज्ञान और प्रज्ञा का प्रतीक है जिसमें ज्ञान और विज्ञान, लौकिक और पारलौकिक, कर्म और धर्म तथा भोग और त्याग का अद्भुत समन्वय है। ऋग्वेद के समय से ही शिक्षा प्रणाली जीवन के नैतिक, भौतिक, आध्यात्मिक और बौद्धिक मूल्यों पर केंद्रित होकर विनम्रता, सत्यता, अनुशासन, आत्मनिर्भरता और सभी के लिए सम्मान जैसे मूल्यों पर जोर देती थी। वेदों में विद्या को मनुष्यता की श्रेष्ठता का आधार स्वीकार किया गया था। विद्यार्थियों को मानव, प्राणियों एवं प्रकृति के मध्य संतुलन को बनाए रखना सिखाया जाता था। शिक्षण और सीखने के लिए वेद और उपनिषद के सिद्धांतों का अनुपालन जिससे व्यक्ति स्वयं, परिवार और समाज के प्रति कर्तव्यों को पूरा कर सके, इस प्रकार जीवन के सभी पक्ष इस प्रणाली में सम्मिलित थे।

शिक्षा प्रणाली ने सीखने और शारीरिक विकास दोनों पर ध्यान केंद्रित किया। कर्म वही है जो बंधनों से मुक्त करे और विद्या वही है जो मुक्ति का मार्ग दिखाए। इसके अतिरिक्त जो भी कर्म हैं वह सब निपुणता देने वाले मात्र हैं। शिक्षा के इस संकल्प को भारतीय परंपरा में अंगीकृत कर तदनु रूप ही विश्वविद्यालयों और गुरुकुलों में शिक्षा दी जाती है। जिस प्रकार विकास और प्रगति का संबंध है उसी प्रकार शिक्षा एवं ज्ञान का संबंध है एक के साथ भावना जुड़ी हुई है और एक के साथ अर्थ (धन) जुड़ा हुआ है। अर्थ प्रधान व्यवस्था में कृतज्ञता का भाव समाप्त हो जाता है हर चीज क्रय विक्रय के लिए उपलब्ध है। ज्ञान हमेशा कृतज्ञता के भाव से लिया जाता है, शिक्षा डिग्रियों के रूप में की जाती है। जहां पर कृतज्ञता का भाव आ जाता है वहाँ उत्तरदायित्व की भावना भी आ जाती है। इसलिए प्रत्येक शिक्षा के साथ नैतिकता जो कि यूनिवर्सल ह्यूमन वैल्यू के रूप में आवश्यक होती जा रही है।

दो तरह के गुरु हमारे जीवन को संवारते हैं एक लौकिक गुरु एवं दूसरे अध्यात्म गुरु। जहाँ लौकिक गुरु हमें आर्थिक रूप से जीवन संचालित करने का ज्ञान देते हैं वहीं अध्यात्म गुरु इसमें नैतिकता का पोषण कर इसे जीवन के चार पुरुषार्थ धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के संतुलन के साथ जीवन को पूर्णता की ओर ले जाते हैं यही भारतीय ज्ञान परंपरा की सफलता है।

हमारी ज्ञान परम्परा में वैदिक काल में महिलाओं की शिक्षा के क्षेत्र में उल्लेखनीय प्रसिद्धि थी जिसमें मैत्रेयी, ऋतम्भरा, अपाला, गार्गी और लोपामुद्रा आदि जैसे नाम प्रमुख थे। बोधायन, कात्यायन, आर्यभट्ट, चरक, कणाद, वाराहमिहिर, नागार्जुन, अगस्त्य, भर्तृहरि, शंकराचार्य, रामानंद, कबीर, दादू दयाल, गुरु नानक, नामदेव, रामदास, सुन्दरदास, रज्जब स्वामी विवेकानंद जैसे अनेकानेक महापुरुषों ने भारत भूमि पर जन्म लेकर अपनी मेधा से विश्व में भारतीय ज्ञान परंपरा की समृद्धि हेतु अतुल्य योगदान दिया है। गुरुकुल शिक्षा में शिक्षार्थी अठारह विद्याओं – छः वेदांग, चार वेद (ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद), चार उपवेद (आयुर्वेद, धनुर्वेद, गन्धर्व वेद, शिल्पवेद), मीमांसा, न्याय, पुराण तथा धर्मशास्त्र का अर्जन गुरु के निर्देशन में

ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए अनुष्ठानपूर्वक अभ्यास कर सम्पादन करते थे जिससे आजीविका निर्वहन में कोई परेशानी नहीं होती थी तथा प्रौढ़ावस्था तक आते-आते अपने विषय के निपुण ज्ञाता बन जाते थे। त्याग, वृत्तिसम्पन्न तथा धन की तृष्णा से परे आचार्य ही भारतीय शिक्षा पद्धति में शिक्षक माना गया है। शिक्षा को व्यवसाय और धनार्जन का साधन नहीं माना जाता था। वायु पुराण में उल्लेख है कि गुरु रूपी तीर्थ से सिद्धि प्राप्त होती है तथा वह सभी तीर्थों से श्रेष्ठ है। प्राचीन भारतीय सनातन ज्ञान परंपरा अति समृद्धि थी तथा इसका उद्देश्य धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष को समाहित करते हुए व्यक्ति के संपूर्ण व्यक्तित्व को विकसित करना था। जब सारा विश्व अज्ञान रूपी अधकार में भटकता था तब सम्पूर्ण भारत के मनीषी उच्चतम ज्ञान का प्रसार करके मानव को पशुता से मुक्त कर, श्रेष्ठ संस्कारों से युक्त कर संपूर्ण मानव बनाते थे। दाद साहब की बानी भी जीवन में विचार साधना और सादगी के समन्वय की वजह से मानवीयता की पक्षधर है, इसलिए साहित्य और समाज की निधि है। यही कारण है कि भक्तिकाल के संत साहित्य को देश के सांस्कृतिक आंदोलन की शुरुआत के रूप में देखा जाता है और दाद साहब को उस आंदोलन के समर्पित योद्धा के रूप में याद किया जाता है। संतो की सृष्टि बड़ी व्यापक रही है। उन्होंने भक्ति, धर्म एवं समाज आदि को संकुचित दायरे से बाहर निकालने का व्यापक प्रयास किया था। मानव एवं मानवता के प्रति संतो ने एक विशिष्ट दृष्टिकोण अपनाया। धर्म को उन्होंने संकुचित दायरे से बाहर निकाला। संतो ने मानव धर्म की संकल्पना को स्वीकारते हुए हर एक धर्म का आदर किया। उसमें निहित अच्छाइयों को स्वीकार किया और उनका व्यापक प्रचार-प्रसार किया। उनका धर्म मानवता का धर्म था जो संसार के प्रत्येक प्राणी के कल्याण का अभिलाषी है। वह क्षुद्रताओं एवं संकीर्णताओं से परे है। धर्म शब्द का अर्थ होता है- धारण करना। कहा भी गया है- 'धारयतीति धर्मः।' अर्थात् जो धारण करे वही धर्म है। मनुस्मृति में भी कहा गया है कि- "धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः।" अर्थात् जो व्यक्ति धर्म की रक्षा करता है, धर्म भी उसकी रक्षा करता है किन्तु जो धर्म का नाश करता है, धर्म भी उसका नाश कर देता है। संत साहित्य में गुरु महिमा, अहिंसा, सत्य, सदाचार, समर्पण आदि धर्म के सकारात्मक पक्ष मिलते हैं जो कि संतो के धर्म के व्यापक फलक का बोध कराते हैं।

संतकाव्य में लोक समाज के अनुकूल कवि व्यवहार की शुरुआत संत कबीर से होती है। स्वामी रामानंद से शिष्यत्व पाने के बाद उनकी काव्य संवेदना में मानवीय करुणा का स्वर प्रमुख हो जाता है। शुरुआती अक्खड़पन खरी-खोटी लताड़-फटकार के तेवर में कमी आती है। इसी कड़ी में संत दाद दयाल का भी नाम है। दाद साहब का पंथ भी बना पर दाद साहब की कैवितार्ई का रंग संत कबीर के रंगों-गुंजों से जैसा ही है। संत दाद दयाल कबीर के लगभग डेढ़ सौ बरस बाद हुए पर उनकी वाणी में प्रेम भाव का निरूपण अधिक सरस और गंभीर है। कबीर के समान खंडन और वाद-विवाद में इन्हें रुचि नहीं थी। दाद साहब की चिंता भी समाज में व्याप्त, छुआछूत, भेदभाव और पाखंडपरके जाति-द्वेष मिटाकर मनुष्य को मनुजवत् व्यवहार के लिए प्रेरित करने की ही थी। इसके लिए उन्होंने प्रेम, करुणा और सहानुभूति का रास्ता अपनाया।

दाद साहित्य की मूल भावना समरसता की है, यह समरसता जाति-वर्ण की है, धर्म-पंथ की है, ज्ञान-भक्ति की है, गृहस्थ-वैराग्य की है। दाद वाणी अतिचारों के विरुद्ध है। दाद का जीवन-दर्शन ज्ञान व अनुभव दोनों पर सामान रूप से आधारित रहा है। उनका उद्देश्य एक ऐसे परिवेश का निर्माण करना था जिसके द्वारा प्रत्येक व्यक्ति अपनी आध्यात्मिक ऊँचाई को प्राप्त कर सके। इसके लिए समता पर आधारित समाज का निर्माण बुनियादी आवश्यकता थी। इस प्रकार दाद दयाल की वाणी में सामाजिक-सांस्कृतिक चिंतन को विश्लेषित करते समय यह ध्यान में रखना

आवश्यक है कि वे 'सतराम' के उपासक हैं, जिस तत्त्व में सत का वास नहीं है वो दाद दयाल को स्वीकृत नहीं है। इसी तर्क के आधार पर वे उन सभी सामाजिक वैषम्यमूलक प्रवृत्तियों का खंडन करते हैं जिनकी आधारभूमि असत है।

**“दाद दोन्यों भरम हैं, हिंद तुरक गुँवार
जे दुहवाँ तैं रहित है, सो गह तत्त्व विचारा।”**

दाद साहब के बारे में कहा जाता है कि वे धुनिया थे। बंगाल के बाउल सम्प्रदाय से भी इनका संबंध माना जाता है। असल में दाद साहब उन्हीं परंपराओं में अपने को मानते थे, जैसा कि उल्लेख उनके दोहों में मिलता है :

नामदेव कबीर जुलाहो जन रैदास तिरै।

दाद बेगि बार नहिं लागे हरि सौ सबै सैरै।

वारकरी सम्प्रदाय के समर्थ संत कवि नामदेव अपने जीवन के अंतिम दो दशकों तक उत्तरी भारत में विचरण करते हुए भक्ति की आधार भूमि से मानवीय प्रेम और सद्भावना का प्रसार करते रहे। इसलिए कबीर रैदास के साथ दाद साहब ने भी दो सौ बरस बाद, उनके अवदान का सम्मानपूर्वक स्मरण किया है।

अहमदाबाद में सन 1544 में जन्मे दाद दयाल जी के संदर्भ में वैसी ही जनश्रुति प्रचलित है जैसी कि संत कबीर के जन्म की मानी जाती है। यही कि दादजी एक शिशु के रूप में साबरमती नदी में बहते हुए लोदीराम नामक एक नागर ब्राह्मण या धुनिया को मिले। कुछ लोग इन्हें अन्य जाति का भी बताते हैं। तत्कालीन अमानवीय हालात की चिंता इन्हें कबीर मतानुयायी संत बुड्ढन के पास ले आयी। इनकी बानी में कबीर का प्रभाव है तो इसका कारण संत बुड्ढन का संग माना जा सकता है दाद जी कहते हैं -

घी दूध में रमि रह्या, व्यापक सब ही ठौर।

दाद बकता बहुत है, मथि काढ़े ते और।।

यह मसीत यह देहरा, सतगुरु दिया दिखाइ।

भीतर सेवा बंदगी, बाहिर काहे जाए।।

(दूध की हर बूंद में घी है यानी जीने की शक्ति, मैं बकवास भी कर रहा हूँ तो इसका मथन कर देखो जीवन रस मिलेगा। मुझे यह चेतना यानी मसनी और देह परब्रह्म (सतगुरु) से प्राप्त हुआ, सो मैं कहीं भी मतलब अपने लिए सेवा पूजा-अर्चना, मनन-चिंतन कर लेता हूँ, आप भी करें, बाहर यानी देवालय ही क्यों जरूरी है?) इसी तरह दाद साहब कहते हैं -

केते पारखि पचि मए, कीमति कही न जाई।

दाद सब हैरान हैं, गुंगे का गुड़ खाइ।

जब मन लोगें राम सों, अनत काहे को जाइ।

दाद पाणी लूण ज्यों, ऐसै रहै समाइ।

(गुंगे के गुड़ यानी प्रभु के प्रसाद का मूल्य आंकने में अनेक पारखी माथापच्ची करके हैरान ही हुए, अरे जब राम की लगन है तो तन कर घमंड से क्या इतराना है। मतलब मोल-तोल क्यों? तुझे या, यह गुंगा (राम) तुझे क्या मोल बतायेगा? तुझे तो पानी में नमक के स्वाद जैसा विनम्र और स्पष्ट होना चाहिए।) संत कबीर की तरह दाद साहब ने अल्पायु से दर-दर तक पर्यटन किया। आमेर मारवाड़, बीकानेर, बंगाल तक और जीवन के अंतिम समय 1592 में नरैना जिला जयपुर में रम गये। यहीं एक वर्ष बाद इन्होंने शरीर छोड़ा। दाद साहब ने अपना पंथ स्थापित करते हुए इसका उद्देश्य भी स्पष्ट किया-

भाई रे ऐसा पंथ हमारा।

द्वै पख रहित पंथ गह पूरा अबरन एक आधार।

वाद-विवाद काहू सौं नाहीं मैं हूँ जग थें न्यारा।

इनके जीवन काल में ही संत प्रवृत्ति से आकर्षित होकर बहुत शिष्य बन

चुके थे। इनके मन में एक संप्रदाय को आरंभ करने का ख्याल आया। इन्होंने सांभर क्षेत्र में “परब्रह्म संप्रदाय” की स्थापना की। इनके जीवन काल तक तो यह संप्रदाय इसी नाम से चलती रही। परंतु इनकी मृत्यु के बाद उनके अनुयायियों ने इस संप्रदाय का नाम बदलकर “दाद पंथ” रख दिया। उसके बाद से संपूर्ण संप्रदाय दादपंथी के नाम से विख्यात हुआ। आरंभ में इनके शिष्यों की संख्या 152 थी। यह 152 शिष्य इनके संप्रदाय के अटूट स्तंभ थे। इन शिष्यों ने इस संप्रदाय को पंजाब, हरियाणा, राजस्थान आदि राज्यों तक प्रचार प्रसार किया।

दाद ने तत्कालीन समाज व्यवस्था में उत्पन्न जाति, पंथ, संप्रदाय आदि के विभेदों को समूल नष्ट करने के क्रांतिकारी प्रयत्न किए, जिसका व्यवहारिक रूप उनका दाद पंथ है। दाद पंथ समतामूलक समाज की अद्भुत मिसाल है, इसमें रज्जब(मुसलमान) हैं, बड़े सुन्दरदास(क्षत्रिय) है, छोटे सुन्दरदास (वैश्य) है, स्वामी गरीबदास (ब्राह्मण), स्वामी जगन्नाथ (कायस्थ) हैं, स्वामी प्रागजन (दलित) हैं। सभी संकीर्णताओं से परे हैं दाद पंथ, इसी भाँति का समाज भी दाद चाहते हैं। यहाँ तक कि दाद ने आराधना के लिए गृहस्थ-वैराग्य जैसा भेद भी स्वीकार नहीं किया। समाज को जागरूक करने वाली दाद जी की प्रमुख काव्य रचनाओं में साखी, पद्य, हरडेवानी, अंगवधू शामिल है।

प्रमुख उपसम्प्रदाय

कालान्तर में दाद पंथ के पाँच प्रमुख उपसम्प्रदाय निर्मित हुए :-

●खालसा (खालसा गरीबदास जी की आचार्य परम्परा से सम्बद्ध साधु

1) ●विरक्त तपस्वी (विरक्त - रमते फिरते गृहस्थियों को दादू धर्म का उपदेश देने वाले साधु।)

●उतरार्धे या स्थानधारी (उत्तरादे व स्थानधारी -जो राजस्थान को छोड़कर उत्तरी भारत में चले गये।)

●खाकी (खाकी - जो शरीर पर भस्म लगाते है व जटा रखते है।)

नागा (नागा शाखा के प्रवर्तक सुंदरदास थे, ये राज्य की सुरक्षा के लिए युद्ध में भाग लेते थे, इसी नागा संप्रदाय के संतों ने जयपुर राज्य के **सवाई जयसिंह** व जोधपुर के **राजा मानसिंह** की सहायता की थी।) **जनश्रुति के अनुसार** दाद जी की भेंट सम्राट अकबर से हुई बताते हैं। यह भेंट फतेहपुर सीकरी हुई जो कि उस समय सम्राट अकबर की राजधानी थी। वहीं दाद जी के शिष्य माधवदास जी के माध्यम से राजा भगवन्तदास से कहकर अकबर ने दाद जी को निमन्त्राण भेजा। जब दाद जी अकबर के दरबार में पहुँचे तो अकबर अपने दरबारियों के साथ बैठे थे। पर अपने बैठने का प्रबन्ध न देखकर दाद जी ने क्षणभर विचार किया ही था कि अकबर ने कहा कि हम तुरन्त एक साथ कुछ बातों का उत्तर चाहते हैं। पहला प्रश्न था-

"खुदा की जात क्या है?"

"उसका अंग क्या है?"

"उसका वजूद कैसा है?"

"उसका रंग कैसा है?"

तब दाद जी ने उत्तर दिया-

इश्क खुदा की जात है, इश्क खुदा का रंग।

इश्क खुदा-इ-वजूद है, इश्क खुदा का अंग।

यह उत्तर सुनकर अकबर ने तुरन्त खड़े होकर क्षमा याचना की, उन्हें उचित स्थान दिया। अकबर इतना प्रभावित हुआ कि उसने चालीस दिनों तक दाद जी के साथ सत्संग किया। इस क्रम में अकबर द्वारा यह प्रश्न करने पर कि तीन गुणों और पाँच भूतों की किस क्रम से रचना हुई? अर्थात् कौन पहले और कौन बाद में बना? दाद जी ने उत्तर दिया-

एक शब्द सब कुछ किया, ऐसा समरथ सोया

आगे पीछे वो करे, जे बल-हीणा होय।।

दाद जी की अमृतमयी वाणी के प्रभाव में अकबर ने 'गोहत्या बन्दी' का फरमान जारी किया और उनकी प्रशस्ति में उन्हें अल्लाह और खुदा का नूर जशहिर किया-

दाद नूर अल्लाह है, दाद नूर खुदाया

दाद मेरा पीव है, कहै अकबर शाह।।

अकबर बादशाह को सत्संग समाप्त कर महाराज दाददयाल जी सीकरी से चलकर दौसा कस्बे में पहुँचे। दौसा से कुछ दूरी पर एक सुन्दर सरोवर के तट पर एक पीपल के वृक्ष के नीचे दाद जी विश्राम कर रहे थे। वह वृक्ष सूखा था। महाराज की दृष्टि उस पर पड़ते ही वह हरा हो गया। इस घटना को सुनकर परमानन्दजी, जो कि छोटे सुन्दरदास जी के पिता थे, पुत्र को साथ लेकर दाद जी से मिलने आये। दाद जी ने सुन्दरदास के सिर पर हाथ रखा। सुन्दरदास दाद जी के शिष्य हो गये। इन्होंने बाद में सुन्दर विलास, ज्ञान समुद्र आदि ग्रन्थों की रचना की और बहुत ख्याति अर्जित की।

दादपंथ के सत्संग स्थल **अलख दरीबा** कहलाते है। दाद परोपकारिता का उच्चतम आदर्श प्रस्तुत करते हैं जिसमें वे उस मृत्यु को श्रेष्ठ मानते हैं जिसके बाद शरीर का पशु-पक्षी भक्षण कर सके। दाद का यह पद्य उनके संपूर्ण चिंतन का साररूप है।

“हरि भज सफल जीवणा, पर उपकार समाए।

दाद मरणा तहां भला, जहां पशु पक्षी खाए।”

दादजी को **दूसरा शंकराचार्य** कहा जाता है वहीं दादजी को 'राजस्थान का कबीर' भी कहा जाता है।

गुरु की महत्ता को संत दाददयाल भी स्वीकारते हैं। वे कहते हैं कि सतगुरु मुझे सहज में ही मिले गए और मुझ पर इतनी कृपा की, कि मैं निर्धन प्राणी उनकी कृपा से धनवान बन गया अर्थात् राम नाम रूपी बहुमूल्य धन की प्राप्ति हो गई। उनकी कृपा से ही अधेकार नष्ट हुआ और ज्ञान रूपी दीपक प्रदीप्त हो पाया है। दाददयाल कहते हैं कि यह तो सदगुरु की ही कृपा है कि जिससे मुझे दयाल (दयालु ईश्वर) के दर्शन हो पाये हैं-

“दाद देष दयाल की, गुरु दिषाई बाटा।

ताला कुँची लाई करि, षॉले सबै कपाटा।।”

संत दाददयाल कहते हैं गुरु, ईश्वर प्राप्ति का वह सरल-सहज मार्ग बता सकते हैं जो वेद कुरान आदि ग्रंथों में भी वर्णित नहीं है। अर्थात् केवल शास्त्रों का अध्ययन ही पर्याप्त नहीं, सदगुरु की कृपा भी अनिवार्य है। दाददयाल का कहना है कि सदगुरु की कथनी को जो शिष्य अपने जीवन में नहीं उतारता है तो समझिए की वह काल के पास जा रहा है और जो साधक सच्चे दिल से स्वीकारता है वह बिना किसी भय के अमर पद को प्राप्त करता है।

दाद जी हिंसा के प्रबल विरोधी थे। वे संसार के प्रत्येक पशु-प्राणी और मानव मात्र के प्रति प्रेम पूर्ण अहिंसक व्यवहार के पक्षधर थे। वे किसी को भी मन-वचन-कर्म से पीड़ा नहीं पहुंचाने का संदेश देते हैं। संत दाददयाल का मत है कि -

“दाद कोई काह जीव की, करै आतमा घात।

साच कहौ संसै नहीं, ते प्राणी दोजग जाता।।”

सभी संतों ने ईश्वर प्राप्ति एवं सफल जीवन जीने लिए सत्संगति की महत्ता को स्वीकारा है। लोक की मान्यता है कि व्यक्ति जिसकी संगति में रहता है उसके गुण अवश्य ही ग्रहण करता है। कहा भी गया है -

“कदली सीप भुजंग मुख, स्वाति एक गुण तीन।

जैसी संगति बैठिए तैसों ही फल दीन।।”

दाददयाल भी कहते हैं कि जहाँ संत जन हैं अर्थात् सज्जनों की

संगति है, वहाँ ईश्वर का वास होता है। सत्संगति से ही ईश्वर की प्राप्ति संभव है। दाद की दृष्टि में सच्चा सत्संग वही है जिसमें व्यक्ति सांसारिक विषय-वासनाओं से मुक्त होकर ईश्वर की ओर गमन करता है। वे कहते हैं -

**“दाद भाव भगति उपजै नहीं, साहिब का परसंग।
विषै विकार छूटै नहीं, सो कैसा सत्संग।”**

व्यक्ति जिसकी संगति में रहता है उसका गुण अवश्य ग्रहण करता है। इसी कारण सभी संतों ने सत्संग की महत्ता का प्रतिपादन किया है। संत दाददयाल ने मन रूपी माला को फेरने पर बल दिया। उनका मानना था कि ईश्वर के समस्त स्थान तो हमारे घट में ही हैं इसलिए ईश्वर का वास भी हमारे मन में ही है अतः बाहरी भटकाव की अपेक्षा मनः परिष्कार का कार्य करना चाहिए, वे कहते हैं-

**“दाद मंझे चेला, मंझि गुरु, मंझे ही उपदेश।
बाहिर ढूँढे बावरे, जहाँ बंधाये केसा।”**

**“मनका मस्तक मंडिये, काम क्रोध के केसा।
दाद विषै विकार सब, सतगुरु के उपेदसा।”**

संत दाददयाल का कहना था कि जिस व्यक्ति का मन रूपी दर्पण उज्ज्वल है, वही व्यक्ति साहिब का दीदार कर सकता है। यदि मन मैला हो तो कितने ही सांसारिक प्रयास किए जाएं ईश्वर प्राप्ति संभव नहीं है। उनका मानना था कि यदि मन रूपी हाथी एक बार अंकुश हीन हो जाए तो फिर उसे बंधन में बाँधना कठिन है। सैकड़ों महावत मिलकर भी उसे बाँधने में सक्षम नहीं हो पाते हैं इसलिए मन पर नियंत्रण रखना बहुत आवश्यक है। उनका मानना है कि जब तक मन के विकार नष्ट नहीं हो जाते तब तक ध्यान लगाने से कोई लाभ नहीं। वे कहते हैं -

**“दाद ध्यान धरै का होत है, जे मन नहिं निर्मल होया।
तो बैग ही सब उद्धरै, जे इहि, विधि सीझे कोया।”**

संतों ने समाज को भी यही संदेश दिया कि हमें जात-पाँत में विश्वास किए बिना सभी के साथ समभाव से व्यवहार करना चाहिए। दाद एक मात्र ईश्वर तत्व में विश्वास करते हैं और पूरे मन, वचन और कर्म से उसकी ही आराधना करते हैं-

**“दाद एक सगा संसार में, जिनि हम सिंरजे सोई।
मनैसा वाचा क्रमनां, और न दजा कोई।”**

संत दाददयाल स्वार्थी और निस्वार्थ की चर्चा करते हुए बताते हैं कि एक मात्र राम या फिर साधु पुरुष ही संसार में ऐसे हैं जो अपना मन निर्मल रखते हुए निस्वार्थ एवं निष्काम प्रेम से बंधे होते हैं -

**“दाद आप सवारथ सब सगै, प्राण सनेही नांहि।
प्राण सनेही राम है, कै साधु कलि मांहि।”**

ईश्वर के मार्ग पर बढ़ने से पहले जो कर्म सांसारिक भौगादि साधक को प्रिय लगते थे उन्हीं सांसारिक भोगादि से मानव का मोह घटता जाता है जब वह ईश्वर के पथ पर अग्रसर होता है-

**“जब विरहा आया दरद सौं, तब मीठा लागा राम।
काया लागी काल है, कड़वे लागे काम।”**

संत दाददयाल को लगता है कि इस संसार में राम नाम के बिना जो कुछ भी है वह सब व्यर्थ का है। संसार में सुख-दुख तो आते-जाते रहते हैं किंतु राम नाम शाश्वत है और जो इस शाश्वत सत्य को स्वीकारता है वह भवसागर से पार जाता है। जो सहज रूप से उस राम की शरण में जाता है उसके विकार स्वतः ही नष्ट हो जाते हैं और उसका मन निर्मल हो जाता है। दाददयाल कहते हैं कि-

**“दाद राम नाम निज वोषदि, काटै कोटि विकार।
विषमै व्याधि थैं ऊबरै, काया कंचन सारा।”**

राम के चरणों में समर्पित होते हुए दाददयाल तो इतना तक कह देते हैं कि-

**“दाद कहतां सुनतां राम कहि, लेतां देतां राम।
षातां पौतां राम कहि, आतम कवल विश्राम।”**

विभिन्न उदाहरणों का सहारा लेकर भी संत दाददयाल ईश्वर के प्रति अपने सच्चे समर्पण को अभिव्यक्ति देते हैं। वे कहते हैं कि मछली एक क्षण के लिए भी पानी के बिना नहीं रह सकती ठीक वैसे ही वे हर समय प्रभु भक्ति में लीन रहना चाहते हैं। जैसे पतंगा दीपक को ही सर्वस्व मानकर उसमें गिर जाता है, ठीक वैसे ही दाद ब्रह्म के ध्यान में लीन रहना चाहते हैं। समर्पण की इस श्रेष्ठ दशा में पहुँचने पर उन्हें सारी दृष्टि ही राममय दिखती है। वे कहते हैं -

**“तनही राम मनही राम, राम रिदै रमि राषी लौ।
मनसा राम सकल परिपूर्ण, सहजि सदा रष चाषी ले।।
नैना राम वैना राम, रसनां राम संभारी लौ।
श्रवणा राम सनमुष राम, रनिता राम बिचारी लौ।।”**

इस प्रकार कहा जा सकता है कि संतों के यहाँ समर्पण प्रमुख है। वे अपने आराध्य के चिंतन स्मरण को ही सब कुछ मानते हैं। उसके बिना यह सारा संसार उनके लिए व्यर्थ है। संत साहित्य जीवन को व्यापकता से देखने का साहित्य है। वह यह मानता है कि धर्म के मार्ग पर चलने वाले साधक को जब गुरुकृपा रूपी अमृत तत्त्व की प्राप्ति हो जाती है तो वह निश्चित ही ईश्वर का प्राप्त करता है। अहिंसा का आचरण उसके मन में दया के भाव संचरित करता है जिससे कि ईश्वर के प्रति उसका समर्पण बढ़ता है। यही पूर्ण समर्पण साधक को ईश्वर की प्राप्ति में सहायक सिद्ध होता है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि संतों का धर्म व्यापक था। वह विविध संकीर्णताओं और आडम्बरों से पूरी तरह मुक्त था।

संदर्भ :-

1. दादग्रंथावली, संपा. डॉ. बलदेव वंशी पृ. 124
2. दादग्रंथावली, संपा. डॉ. बलदेव वंशी पृ. 5
3. दादग्रंथावली, संपा. डॉ. बलदेव वंशी पृ. 8
4. दादग्रंथावली, संपा. डॉ. बलदेव वंशी पृ. 72
5. दादग्रंथावली, संपा. डॉ. बलदेव वंशी पृ. 89
6. दादग्रंथावली, संपा. डॉ. बलदेव वंशी पृ. 168
7. दादग्रंथावली, संपा. डॉ. बलदेव वंशी पृ. 21
8. दादग्रंथावली, संपा. डॉ. बलदेव वंशी पृ. 3
9. दादग्रंथावली, संपा. डॉ. बलदेव वंशी पृ. 115
10. दादग्रंथावली, संपा. डॉ. बलदेव वंशी पृ. 9
11. दादग्रंथावली, संपा. डॉ. बलदेव वंशी पृ. 9
12. दादग्रंथावली, संपा. डॉ. बलदेव वंशी पृ. 94
13. दादग्रंथावली, संपा. डॉ. बलदेव वंशी पृ. 161
14. दादग्रंथावली, संपा. डॉ. बलदेव वंशी पृ. 14
15. दादग्रंथावली, संपा. डॉ. बलदेव वंशी पृ. 40
16. दादग्रंथावली, संपा. डॉ. बलदेव वंशी पृ. 22
17. दादग्रंथावली, संपा. डॉ. बलदेव वंशी पृ. 23